अध्याय - 3

समकालीन कविता : स्त्री जागरण से सशक्तीकरण तक

अध्याय-तीन

3.0. समकालीन कविता : स्त्री जागरण से सशक्तीकरण तक

समकालीनता सभी प्रकार से गौरवपूर्ण और प्रगतिशील परिवर्तन का समय है। साहित्यिक जगत् में नव विषयों का व्यापन, सम्मेलन और समायोजन इस समय में शुरु हुआ और इससे विशेष तरह का अध्ययन विशेषता संभव हुआ। समकालीनता का काल विलंब लंबा है। कई लोग इसे पिछली सदी के अंतिम दशकों से शुरु काव्य प्रवृत्ति मानते हैं तो कई उसे काल–समय के परे 'समकाल' के अर्थ में उपयुक्त करते हैं। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से यह समय अनेकों परीक्षण व निरीक्षणों से युक्त है, जो इंसान व जगत पर नए सिरे से देखता परखता है।

कई बार लोग समकालीनता को उत्तराधुनिकता से जोडते हैं और उसे अत्यंत मानते हैं। साहित्य या कविता की प्रगतिशीलता और ईसानी संवेदना की वेगमयी यात्रा को देखते हुए इस अध्ययन में समकालीनता को आधुनिकता के विकास के रूप में देखा हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से उत्तराधुनिकता का समय आधुनिकता के विकास के रूप में देखनेवाले लोग हैं। भारतीय माहौल में आधुनिकता की सैद्धांतिकी पूर्ण कभी नहीं हुई थी। इस कारण से भी उत्तराधुनिकता को नकारनेवाले लोग हैं। सैद्धांतिकी कुछ भी हो, काव्य संवेदना और कविता यात्रा की दृष्टि से समकालीनता स्त्री जागरण में प्रगति जोड़ती है। अतः इस संदर्भ में समकालीन कविता पर विस्तृत अध्ययन विश्लेषण संभव है, जो इस विषय को स्फूर्त और पूर्ण करता है।

3.1. कवियों का योगदान

यह निर्विवाद बात होगी कि काव्येतिहास में यही समय है जिसमें संख्या में कवि, कवयित्री तथा कविताएँ सामने आई। तरह–तरह की ये कविताएँ इंसान, समाज, जगत्, चिंतन, विचारधारा आदि पर नए सिरे से देखने की प्रेरणा देती हैं। इसलिए समकालीन कविता को आलोचकों ने 'भविष्य के प्रति स्पष्ट दिशाबोध' वाली बताया था।[1]

कवियों के भागदेय की दृष्टि से समकालीनता का स्वर पिछले काव्य समय में भी मिलता है। उसकी श्रृंखला के रूप में आगे कवि कार्य हुआ करते थे। वामपंथी रुझानों से संप्रीत सभी कविताएँ, इस अर्थ में प्रगतिशीलता की झाँकियाँ प्रस्तुत करती हैं। समकालीन परिसर में जीवित व वरिष्ठ कवि श्री चन्द्रकान्त देवताले इस परिप्रेक्ष्य में ऐसी कई कविताएँ प्रस्तुत करते हैं, जिनमें स्त्री दायित्व प्रकृति के पक्ष में मुखर है। स्त्रीत्व पर नवदृष्टि देवताले जी के कवि 'माँ पर नहीं लिख सकता कविता' शीर्षक कविता लिखता है तो उसका इंगित यही है कि माँ का स्थान प्राणी जगत् में सबके परे है।

मातृत्व पर देवताले का कवित्व समर्पित हो गया है। कवि हरदम उस छाया में बसना चाहता है।

''वह मेरी भूख और प्यास को
रत्ती रत्ती पहचानती थी
और मेरे अक्सर अधपेट

---

1. रतनकुमार, हिंदी कविता का वैचारिक पक्ष, पृ. 116

खड़ा उठने पर

बाद में जूठे बर्तन अबेरो

चौके में अकेले बड़बडाती रहती थी।

बारमदे में छिपकर

मेरे कान उसके हर शब्द को लपक लेते थे

और आखिर में उसका भगवान के लिए बड़बड़ान

सबसे खौफनाक सिद्ध होता।

और तब मैं दरवाज़ा खोले

देर रात तक के लिए सड़क के

एकान्त और अंधेरे को समर्पित हो जाता।[1]

(माँ जब खाना परोसती थी)

पिछले समय से लेकर मातृत्व पर यथार्थवादी दृष्टि यहाँ पर मिलती है। यहाँ पर सुरक्षा का दामन ही नहीं मानसिक और सामाजिक भी है। राष्ट्र को 'माता' घोषित करके आज़ादी की लडाई लड़ने की प्रेरणा पिछले समय के कवियों ने दी थी। यहाँ पर माता सार्वकालिक रक्षा की अधिकारिणी है। वह जीवन भर बच्चे के लिए मानसिक संबल दे सकती है।

आगे सभी कवियों ने भी माता पर अच्छी कविताएँ लिखी हैं –

''घर में माँ की कोई तस्वीर नहीं है

जब भी तस्वीर खिंचवाने का मौका आता है

---

1. चन्द्रकांत देवताले, लकडबाघा हँस रहा है, पृ. 51–52

माँ घर में खोई हुई चीज़ को

ढूँढ़ रही होती है।''[1]

(माँ की तस्वीर)

पिछली कविताओं से यहाँ पर आकर कवि इतना सामान्य विभूषण रहित है कि वह माँ की दीनता को, उसकी मासूमियत के साथ देखता है। समकालीन परिसर के प्रमुख कवियों ने इस तरह की कविताएँ की हैं। जीवन संकट को झेलनेवाली औरत पूरे घर की ज़िम्मेदारी उठानेवाली दायित्व की पुतली है। पारिवारिकता के साथ सामाजिकता को मज़बूत रखनेवाली शक्ति आदि के रूप में भी उसका चित्रण है।

3.1.1. पत्नीत्व पर

यह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पड़ाव है कि यथार्थवादी, प्रगतिवादी दौर में इंसान को इंसान मानने की दृष्टि साहित्य में व्याप्त हुई। स्त्रियों के आडंबररहित रूप को कविता में यथार्थपूर्ण स्थान मिला। संवेदना उसके सौन्दर्य का मानक है। इसकी श्रृंखला के रूप में समकालीनता तक पहुँचते–पहुँचते तरफदारी का साहित्यिक माहौल सृजित हुआ। यह सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्तर की महिमा भी थी। पत्नी को पारिवारिकता का पूरा दायित्व सौंपकर बाहर काम करनेवाले पुराने कवि की जगह समकालीन कवि, उसके साथ हाथ बाँटने को सोचते हैं, भले ही व्यावहारिकता में इसे अबभी 'पुरोगामी' दृष्टि नहीं मानी जाती है।

---

1. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, पृ. 27

''मेरी पत्नी कितना काम करती है
और छींकते रहने के बावजूद
कुछ न कुछ करती ही जाती है।''[1] (सत्तार)

गृहस्थी व घरेलू काम को वज़नदार कार्य नहीं माना जाता था। पुंस दृष्टि में परिवर्तन समकालीनता का देय है। आलंबन और उपमा की जगह समकालीन कविता में औरत आश्रय बनकर बोलती है। कवि अपने को औरत मानकर काम करते हैं। पवनकरण की कविताओं का संकलन 'स्त्री मेरे भीतर' इस प्रकार की कई कविताओं से भरपूर है। ''स्त्री के साथ और उसके भीतर रहकर ही ... मैंने अपने को पहचाना है''[2] बताने में समकालीन कवि हिचकते नहीं हैं।

स्त्रीत्व की पहचान के युग में कवियों की उदारवादी रवैयों से बढ़कर उनका सहचिंतन और समानता दावा काम आता है और वे नए सिरे से हर एक की व्याख्या करते हैं। नए युग के अनुसार कविता के शब्दों तथा काव्यशास्त्रीय तत्वों में परिवर्तन भी मौजूद है।

3.1.2. औरत और घर

इसी शीर्षक की एक कविता मिलती है, समकालीनता की प्रगतिशील कवयित्री कात्यायनी के यहाँ। इसमें उन्होंने घर के साथ औरत के संबंधों पर कई प्रश्न खड़ा किए। कविता की शुरुआत से ही शताब्दियों से कवियों द्वारा

---

1. चन्द्रकांत देवताले, सत्तार, पत्थर की बेंच, पृ. 47
2. चन्द्रकांत देवताले, अगर हरी चीज़ में बताई, पृ. 35

लिखे गए घर संबंधी मिथकों पर शंका प्रकट की गई है। परिवार के विघटन के माध्यम से कवयित्री ने औरत और घर के बीच पडी रही चीज़ों व स्थितियों पर बयान दिया है।

''वहाँ एक औरत रहती रही
घर को हिफाजत के साथ घर बनाए हुए,
उसे भूतों का डेरा बनने से जतनपूर्वक बचाते हुए,
घर में सुरक्षापूर्वक
होने का अहसस बह एक
बेहद नशीली शराब की तरह पीती रही
वहाँ गैस थी, मिक्सी और मसालदानी थी,
सिंक, वाशबेसिन,
सैनिफ्रेश–ओडोनिल और मेंहदी थी,
नहाने–कपड़े धोने के साबुन,
सिंगारदान, झाडू, कुर्सियाँ – दिवान, कैलेण्डर पेण्टिंग्स
स्वर्गीय पिताजी की माला सजी तस्वीर पति के साथ।
बिस्तर था, बच्चे थे,
बेडस्विच से जलनेवाला नीला बल्ब भी था।'' [1] (औरत और घर)

''घर से अलग होकर
एक लंबा सफर तय किया औरत ने
पागलखाने तक का।

---

1. कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 67

लेकिन आश्चर्य!

आखिरकार उसे श्रमादत मिल ही गया।

उसने पाया कि यह भी एक घर था।

तीमारदारी, चौकसी

और हिदायतों के साथ

फर्क सिर्फ इतना था कि

यह उनका घर था

जिनके लिए दुनिया में नहीं था

कोई और घर''[1]

3.1.3. स्त्रीत्व का मानकीय विखंडन

माँ, पत्नी, प्रेमिका के साथ स्त्रीत्व के विविध मानकों का विखंडन समकालीन कविता के करतबों में शामिल है। वह हर पुरानी बातों पर पुर्नदृष्टि डालकर यह बताता है कि स्त्रीत्व के विखंडन के साथ, पुरुषत्व का विखंडन भी ज़रूरी है। द्वंद्व के रूप में रूपायित इनके सामाजिक सांस्कृतिक मानकों पर प्रश्न किए बिना समकालीन कविता आगे नहीं जा सकती। स्त्री के समान संवेदना जाहिर करनेवाले पिता का दृश्य नीलेश रघुवंशी ने शब्दबद्ध किया है –

''माँ

बेसाख्ता आ जाती है तेरी याद

घबराई हुई–सी प्लेटफार्म पर

हाथों में डालिया लिये

---

1. कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 69

आँचल से ढके अपना सर
माँ मुझे तेरी याद आ जाती है।
मेरी माँ की तरह
ओ स्त्री
उम्र के इस पड़ाव पर भी घबराहट है
क्यों, आखिर क्यों?
क्या पक्षियों का कलरव
झूठमूठ ही बहलाता है हमें?''[1]

जाहिर है समकालीन कविता स्त्री या पुरुषभेद बिना इंसानी संवेदना को शब्दबद्ध करने में सटीक उतरती है। यहाँ पर कविता लिंग तथा यौनभेद की गुत्थियों व पूर्वधारणाओं से मुक्ति चाहती है। इसलिए कई बार कवयित्री बताती है कि,

''वह मेरा संघर्ष
तुम से नहीं
अपने आप से है''[2]

3.1.4. समानता का दावा और सामाजिक उलाहना

तुमने कहा विश्वास
मैंने सिर्फ तुम पर विश्वास किया
तुम ने कहा वफा

---

1. नीलेश रघुवंशी, माँ, घर निकासी, पृ. 15
2. अनामिका, अनुष्टूप, पृ. 70

मैंने ताउम्र वफादारी निभाई
तुम ने कहा प्यार
मैंने टूटकर तुम्हें प्यार दिया
मैंने कहा हक
तुमने कहा सबकुछ तुम्हारा ही है
मैंने कहा, मान
तुमने कहा अपनों में मान अपमान क्या?
मैंने कहा बराबरी
तुमने कहा, मुझसे बराबरी?
मैंने कहा आज़ादी
तुमने कहा, जाओ
मैंने तुम्हें सदा के लिए मुक्त किया।''[1]

स्त्री मुक्ति के संदर्भ में कई धारणाएँ हैं। इसके वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आयाम हैं। औरत की तरह पुरुष भी कई दफा अस्वतंत्रता और प्रथाओं के गुलाम मात्र रह जाता है। उपर्युक्त कविता पुरुष का उलाहनापूर्ण बयान जैसा है। जिसमें यह संकेत भी मिलता है कि उसकी स्थिति औरत से बेहतर नहीं है। स्त्री मुक्ति को पुंससत्तात्मकता तथा पितृसत्तात्मकता से जोडकर चर्चा ज़रूर होती है। उसमें पुरुषत्व के सामाजिक एवं सांस्कृतिक निर्मितियों से भिंडत भी शामिल है। बेहतर सामाजिक सुविधाएँ जबतक पुरुष की तुलना में स्त्रीत्व को नहीं दी जाती हैं तब तक यह शिकायत मिलती रहेगी कि स्त्री की निंदा होती है।

---

1. रूपाली सिन्हा, मुक्ति, हंस, पृ. 55

''इस ज़िदगी में हमने
किया सब गलत
पैदा हुआ यहाँ पर
पढ लिख के मिली डिग्री
वह भी गलत
जब नौकरी तलाशी
मिली नौकरी गलत
है तो बहुत हितैषी
दिन सबको है गलत''[1]

इस तरह से बाह्य विवाद या सवाल–जवाब से स्थिति गंभीर होती है और लोग इस पर सोचने लगते हैं। अकादमिक एवं सामाजिक क्षोभ में स्त्री मुक्ति की बहस से जो क्रियात्मक एवं व्यावहारिक परिणाम निकाला जाता है, वह मूल्यहीन नहीं है। काल संक्रमण, माने भारतीय इतिहास में जागरणमूलक आधुनिकता के साथ स्त्री मुक्ति उर्फ समाज मुक्ति की संकल्पना मज़बूत हुई। इसके साथ स्त्री के विभिन्न रूपों, विशेषताओं, भावाभिव्यक्तियों का विस्तार समकालीनता में ही प्राप्त होता है। इसके सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक कारण हैं। पुरानी कविताओं का पुर्नवाचन और पुनराकलन ने भी समकालीन कविता को गौरवान्वित किया है। पुराने अर्थों में नहीं, नए अर्थों में भूतकाल से संवाद करनेवाली स्त्रियाँ गौरव के साथ कविताओं में भी स्थान पाई हैं।

---

1. ममता कालिया, खॉटी घरेलू औरत, पृ. 54

3.2. समकालीनता और कवयित्रियों का स्वर

छायावाद के बाद ही आलंबन से अनुभवी के स्थान पर स्त्री पात्र प्रस्तुत हुए थे। समकालीनता वह दौर है, जिसमें कवयित्रियों की संख्या बढ गई। विविध प्रांतों, समुदायों, दलितों तथा आदिवासियों में से स्त्री प्रतिनिधित्व सामने आए। स्त्री ने हाशिए से केन्द्रीय जगत् में स्थान हासिल किया।

समकालीन कवयित्रियों में सभी ऐसी हैं जो स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व मानती हैं। इनकी रचनाओं में, विशेषकर कविताओं में स्त्री का प्रतिमान एक तरह नहीं होता है, यह आवश्यक भी नहीं है। कात्यायनी, अनामिका, निर्मला पुतुल आदि के नाम मुख्य रूप में चर्चित हैं। रमणिका गुप्ता, नीलेश रघुवंशी, रंजना श्रीवास्तव, निर्मल गार्ग, रंजना जायसवाल, वजदा खान, वर्तिका नंदा आदि नामों के साथ यह युवा पीढ़ी तक चली आती है। यह बताना कठिन है कि इन सबका कविता स्वर एक जैसा है। पर स्त्री होने और जीने तथा दोहरी दुनिया में गुजारने की वेदना तथा प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न स्वरूप में तथा उसका भुक्तभोगी रहने का अन्दाजा इन सब में मौजूद हैं। इन साहित्यिक हस्ताक्षरों से गुज़रते हुए यह भी प्रतीत होता है कि स्त्री जागरण और स्त्री पक्ष के सामाजिक न्याय की माँग में इनका भी योगदान अनन्य है। यहाँ तक कवियों ने भी स्त्री के आजीवन संघर्ष और दुविधापूर्ण जीवन को स्वीकारा है, शब्द बद्ध किया है। कवि दिनेश कुशवाह की पंक्तियाँ हैं –

''स्त्री के पास ऊब थी, आदतें थी, अजूबे थे
मोहिनी थी, मर्मथा, गृहस्थी थी
गरीबी थी, कठिन संघर्ष थे
गीत थे, गाने की इच्छा थी

कहीं अमीरी और पोश भी थे
पर आँसू सब जगह थे।''[1]

समकालीन कविता का लक्ष्य यह है कि वह इस सर्वत्र फैले आँसू के अर्थ को थल–काल एवं संवेदना के साथ स्त्रीपक्ष में वाचित करें। शंका नहीं कि इस लंबी प्रक्रिया में जुडी रहती है समकालीन कविता।

3.3. वैचारिक एवं राजनीतिक जागरण

भारतीय स्त्रियों को कैद करके रखनेवाली पारिवारिक व्यवस्था पर कवयित्रियों ने प्रश्न किया। घर स्त्री के लिए सुरक्षा की जगह मानी जाती थी, जिसका कालानुरूप खण्डन किया जाता है। घरेलू स्थिति और पारिवारिक व्यवस्था को वह मानती है और उसकी सुरक्षा को बनाए रखने का प्रयास करती है। बनाए रखती हुई वह उसके अनुशासन, त्याग और दोहरी मानसिकता पर सोचती है। कवयित्री कात्यायनी के शब्दों में :–

''एक सख्त अनुशासनप्रिय अभिभावक भी था धर
लगातार पीछा करता था,
जब भी औरत निकलती थी बाहर सड़क पर।
जानता था वह, औरत का आना सड़क पर
खतरनाक होता है औरत के लिए
और पूरे समाज के लिए भी।''[2]

---

1. दिनेश कुशवाह, सदी की शुरुआत पर स्त्री के लिए शोकगीत, पृ. 424
2. कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 68

सामाजिकता में कभी स्त्री को जगह नहीं दी जाती थी। नवजागरण ने ही स्त्री की सामाजिक भागीदारी को प्रोत्साहन दिया था। पर राजनैतिक उपयोग के बाद पितृसत्तात्मकता उसका स्वार्थपूर्ण उपयोग ही करता है। यह देखकर स्त्री चकित रहती है और बगावत करती है।

''मुक्त करो, मुक्त करो मुझे
इस बंदिरा से
अन्यथा मैं मर जाऊँगी
जग को चकित कर जाऊँगी।''[1]

कात्यायनी हिंदी कविता का लब्ध प्रतिष्ठित राजनीतिक स्वर भी है जो स्त्री वैचारिकता एवं साहित्यिक चेतना का सही प्रतिनिधित्व है। उनकी कलम से पददलितों का मुक्तिचिंतन सही मायनों पर बहता है।

स्त्री वैचारिकी पर यह सोच है कि वह पुरुष के विरोध में है। असल में स्त्री समस्याएँ, पुरुष सत्ता निर्मित अधिक हैं। समाज, पितृसत्तात्मक और पुरुषसत्तात्मक है। वहाँ पर स्त्री जब भी अपनी दीनता की दास्तान कहने लगती है, उसे पुरुष सत्तात्मकता पर बोलना पडता है। यही परिप्रेक्ष्य यह आशय देता है कि स्त्री, पुरुष के विरोध में है। सच तो यह है कि समकालीनता की दौर में ही नहीं, परंपरागत स्त्री हो या वरेण्य परिवार की स्त्री, सभी पुरुष को चाहती है और घरेलु जीवन को संतुलित गुज़ारना चाहती है।

---

1. कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 77

3.4. आत्मनिरीक्षण की शक्ति

परंपरा निर्वाह का दायित्व स्त्रियों पर है। जैविक तथा दैहिक स्तर पर वह संतति निर्माण के लिए ज़िम्मेदार बन जाती है। कई बार न चाहने पर भी उसे इसका निर्वाह करना पड़ता है। पुराने ज़माने में विवाह की उम्रसीमा नहीं थी तो स्कूल व शिक्षा के अवसर छोड़कर अवयस्क लडकियाँ औरतों की भूमिका निभाती थी। यौन–लिंग शोषण की सतत शिकार होती लडकियाँ देह को कैदखाना मान लेती हैं और अपने स्त्री जन्म को कोसती हैं। कई बार वे यह विश्वास करती हैं कि उनका स्त्री होना शाप है। अनामिका की पंक्तियों में –

''यह मेरा संघर्ष
तुम से नहीं
अपने आप से है
इसकी दरारों में दफनाई
देह मेरी है
इसकी पतझड शाखा पर अटकी है
मेरी आजन्मी आत्मा।''[1]

स्त्रीत्व को लिंग–यौन–श्रम शोषण की शिकार बनानेवाली संस्कृति व सभ्यता के रवैयों पर स्त्री कविता हमेशा प्रश्न करती है। यह सही है कि पुंसाधिपत्य में मानसिक व शारीरिक तौर पर अप्रसन्न रहनेवाली औरत, खुले में आँसु बह नहीं पाती है। कविता यह ऐतिहासिक कार्य करती है। यह भी स्वीकार करती है कि स्त्रियों से बहुत कम ही रो पाती हैं।

---

1. अनामिका, अनुष्टूप, पृ. 70

''फूल है तो
शूल भी होना ज़रूरी
दुख नहीं तो
हर खुशी है, बस अधूरी
धरा तपती
प्यास बढ़ती
समझ लो तब
घटा बस छा ही रही है।''[1]

3.5. स्त्री आवाज की विकासशील यात्रा

व्यापक संदर्भ में कवयित्रियों का स्थान, समकालीन साहित्यिक समय में महत्वपूर्ण है। इनके साथ स्त्री विषयक कविता लिखनेवाले युवा कवि हैं, जो स्त्री जागरण या सशक्तीकरण के संदर्भ में गौर करने योग्य हैं। एक दृष्टि से समकालीन कवियों में कोई ऐसा कवि नहीं है जिन्होंने स्त्री विषयक कविता नहीं लिखा हो।

कवियों की लंबी फेहरिश्त होने पर भी कवयित्रियों की आवाज महत्वपूर्ण इसलिए उभर आती है कि वे इस बाबत भुक्त भोगी हैं, अनुभवी और स्वानुभूत पीड़ा प्रस्तुत करनेवाली हैं। जागरणमूलक आरंभिक प्रयासों से आगे जाकर ये स्त्री सशक्तीकरण और स्त्री जाति के समग्र विकास पर बोलती हैं। इनके विषयों के अवतरण और शैली में अनन्यता और समसामयिकता है। भाषा, शब्द, अलंकार, रूपक तथा काव्य भंगिमा में इनकी कविताएँ महत्वपूर्ण विशेषता की माँग करती हैं।

---

1. निशा चतुर्वेदी, गगनांचल, पृ. 235

3.5.1. प्रयोगात्मकता

समकालीनता काव्य अपने समय के अर्थ में, अस्थिर होती हुई पूर्वकाल से भिन्न और कई चरणों पर विकसित है। साहित्यिक अर्थ में इस काल का परिचय ही बहुस्वर है, जिसे सूचित करने के लिए दूसरा शब्द नहीं मिलता। स्त्री के विषय में भी यह शब्द सार्थक लगता है। क्योंकि स्त्रियों की विविधता और अनन्य विशेषताओं को प्रकट करने योग्य कोई दूसरा शब्द नहीं है। माँ, सहयोगिनी, प्रेयसी, प्रिया की परंपरागत भूमिकाओं में वह अब भी रहती है, जिनकी मज़बूरियों से वह मुक्ति चाहती है, उनकी संवेदनात्मक खुशियों से वह अलग होना नहीं चाहती है। बगावत इन भूमिकाओं के संस्थागत स्वरूप को लेकर की जाती है। स्त्री की अनन्यताओं को भी शोषण का कारक बनाया जाता है, तो वह उसे समझ लेती है।

''तुम्हारे पास शब्द है तर्क है बुद्धि है
पूरी की पूरी व्यवस्था है तुम्हारे हाथों
तुम सच को झुठला सकते हो
बार बार बोलकर
कर सकते हो एक वाक्य में
सब कुछ खारिज
आँखों देखी को गलत साबित करते हो तुम
जानती हूँ मैं
पर मत भूलो
अभी पूरी तरह खत्म नहीं हुए

सच को सच और झूठ को
पूरी ताकत से झूठ बोलनेवाले लोग।''[1]

समकालीन स्त्री कई अर्थों में शिक्षित है, जागृत है। वह खुद को अनन्य मानती है। कविगण भी कई संदर्भों पर यह मानने को तैयार है कि स्त्री अनन्या है। आज की स्त्री, सहानुभूति या सहयोगिता से बढ़कर समानता का हक और इनसानियत से परिपूर्ण व्यवहार चाहती है।

करीब उन्नीस सौ पचहतर के समय की हिंदी कविता कई तरह के प्रयोगों को संभालती संवारती आगे बढ़ रही थी। इस समय में ही हालावाद जैसे प्रयोग भी मिलते हैं जिनमें अश्लीलता, मादकता आदि के वर्णन का आरोप है। प्रयोगात्मक होने के कारण इनमें स्त्री संबंधी कल्पना भी है। पर दूसरी दृष्टि में यह पृष्ठभूमि डालनेवाला समय भी था, जो कवयित्रियों को लिए राह बना दी थी। सत्तर–अस्सी के दशकों में समग्र दृष्टि से स्त्री जागरण की पुकार कविता में सुनने को मिली। यह पुकार मात्र स्त्री जाति पर केन्द्रित नहीं थी। सामाजिक राष्ट्रीय अध्ययन के लिए नारी की उन्नति को केन्द्रित करनेवाली योजनाएँ इस समय में सबसे अधिक कार्यान्वित हुई। 1975 को यु एन ने भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलावर्ष की घोषणा की थी।

3.6. वर्ग विशेष पर ध्यान

कोई जनजाति कहता है
तो कोई पुकारता है वनवासी

---

1. निर्मला पुतुल, चुडका सोरेन से, अपनी घर की तलाश में, पृ. 57

तैयार नहीं है वे सब के सब
आदिवासी मानने को हमें।[1]

समकालीन काव्य संदर्भ में स्त्री–पुरुष, सवर्ण–अवर्ण, उच्च–निम्न, ग्रामीण–आदिवासी सभी वर्गों तथा प्रांतों से काव्य उदाहरण मिलते हैं। मेहनतकश लोगों पर सबसे अधिक जागरणमूलक कविताएँ इस समय में लिखी गई। इस समय के पहले तक शिक्षा को जागरण की धुरी मानी जाती थी। यहाँ पर आकर शिक्षा की गुणवत्ता एवं राजनीति पर ध्यान केन्द्रित हो गया। निर्मला पुतुल ने कविता में ही व्यक्त किया कि आदिवासी को दूसरों की शिक्षा पद्धति में डाल देने से क्या होता है। समता और असमता पर नागरिकों के मानकों पर यह आदिवासी कवयित्री गुस्सा एवं विरोध व्यक्त करती है।

निर्मला पुतुल की एक कविता 'मेरी सबकुछ अप्रिय है उनकी नज़रों में' कवयित्री बताती है कि सभ्य, शहरीय तथा पढ़े–लिखे कहे जानेवाले लोग आदिवासी को पिछड़े व असभ्य मानते हैं। आधुनिकता की द्वंद्ववादी दृष्टि में ऐसी गलतफहमी लोगों में फैली थी। आदिवासी को उनके अपने जीवन संदर्भ, रीतियाँ तथा खासियतों के अनुसार मानना ठीक है। हालिया यह दृष्टि कविता तथा साहित्य के पास उपलब्ध होती हुई दिखाई पडती है। समाज वैज्ञानिकों तथा नृतत्वशास्त्रियों के प्रयासों के कारण प्रदेश या सामुदायिक विशेषताओं का विवेक मज़बूत हो गया है।

कहने का मतलब यह है कि जागरण के लिए दी जानेवाली शिक्षा को समय–संदर्भ–समुदाय एवं संस्कृति के सबलीकरण के लिए अनुकृत होना

---

1. निर्मला पुतुल, धर्म के ठेकेदारों की ठेकेदारी, अपने घर की तलाश में, पृ. 108

चाहिए। पर्यावरण एवं प्रकृति से जुडे रहनेवालों के लिए उनके जीवन का प्रगतिमूलक बनाने योग्य शिक्षा का इंतज़ाम होना चाहिए। बदले में अमल की जानेवाली योजनाएँ एकपक्षीय होती हैं तोउसका कोई परिणाम निकलता नहीं है। कई बार योजनाओं का विरोधी परिणाम भी होता है।

3.7. सुधारमूलक विवेक

स्त्री जागरणमूलक वैचारिकी असल में सुधारमूलक भी है। इसका ज्ञान अब सभी समाज वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों में है। पर पितृदायकता से ग्रस्त भारतीय समाज में ज्ञान से बढकर अधिकार एवं धन की शक्ति होती है। सामाजिक जगह पर अधिष्ठापक रहनवाले अपनी सुविधाओं से परहेज रखने की बात सोच नहीं पाते हैं। अतः राजनीतिक अधिकार की रक्षा के लिए जो स्त्री आरक्षण की बातें, अर्सों से चल रही है, उस पर अब तक ठीक अमल नहीं हो पाया है।

यह मानने की बात है कि स्त्री उन्नमन के रास्ते पर काफी प्रगतिमूलक बात हुई है। कम से कम कुछ पद्धतियों में स्त्री–उत्पीड़न, दहेज दहन, भ्रूणहत्या, स्त्री अशिक्षा आदि के आंकडों में अंतर देखने को मिलता है। पर समकालीन समय के संदर्भ में नव समय की विसंगतियाँ स्त्रियों का पीछा नहीं छोड़ती हैं। वेश्यावृत्ति, बालिका ट्राफिकिंग, बालिका मज़दूरी, फैशन जगत का देह शोषण, फिल्मी तथा सईबर पोर्णोग्राफी आदि के नए प्रसंग इसके उदाहरण हैं।

शहरी महिला की तुलना में ग्रामीण तथा आदिवासी औरतें कम सुविधा प्राप्त हैं। पानी तथा अन्य बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए आज भी औरतें हड़डीतोड मेहनत करती हैं। जहाँ पर इनकी सुविधाएँ हैं वहाँ पर भी औरतों व लडकियों पर लिंगभेद का आक्रमण झेलना पड़ता है। इस अर्थ में स्त्री कविता का महत्व यह है कि वह समस्त विषयों के साथ स्त्री जीवन को मिलाकर बात करती है। यहाँ पर वह जगत की कविता है, जिसके केन्द्र में स्त्री है। आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल की बातें देखिए –

''मैं अपने इलाके के सूखे और
अकाल की चर्चा करना चाहती हूँ
भूख, बीमारी से लडते लडते मँगरू, बुधवा और
इलाज के लिए राशन कार्ड गिरवी रखनेवाले
समरु पहाडियों की बात करना चाहती हूँ।''[1]

इस तरह की पंक्तियों में अपनी दीनता के साथ पर्यावरणमूलक स्त्रीदृष्टि उर्फ सामाजिक दृष्टि की महत्ता पर कवयित्री सूचित करती है। भारतीय प्रसंग में स्त्री जागरण की गति सशक्तीकरण के संदर्भ तक जा मिलता है। वैचारिक प्रतिबद्धता या स्त्री राजनीति से बढ़कर सामाजिक व सामुदायिक जीवन के एक ढ़ंग के रूप में स्त्री सबलीकरण की माँग मिलती है।

इने गिने उदाहरणों को छोडे तो उग्रवादी, समलैंगिक धारणाओं की झाँकियाँ बहुत कम देखने को नहीं मिलती है। सिनेमा या कुछ गद्य साहित्यिक

---

1. निर्मला पुतुल, आपके शहर में आपके बीच रहते आपके लिए, हंस, मई 2005, पृ.50

रचनाएँ इन विषयों पर बहुचर्चित रही थीं। कविता में स्त्रियों का पर उग्रवादी रवैया कम ही है, पर ढूँढ़ने पर इसके इनेगिने उदाहरण मिलेंगे। उदाहरण के लिए कवयित्री रंजना जायसवाल की कविताओं में अस्मितावादी स्वर ज़्यादा प्रकट है।

स्त्रियों का बहनापा स्थापित करनेवाली कविताएँ भी लिखी जाती हैं, जो लिंग भेद की दुनिया को वैचारिक एवं संवेदनात्मक ठेस पहुँचाने में सक्षम है। पवन करण की एक कविता 'मौसेरी बहनें दो लडकियों के आपसी निभाव पर केन्द्रित है। उनकी आपसी सदाशयता पर कवि का कथन है कि वे सामाजिक असहिष्णुता एवं डर के कारण एक दूसरे पर अडिग विश्वास पालती हैं। एक दूसरे का संबल बनती है। कहने का अर्थ यह है कि स्त्री विरोधी दिक्कतों व मुश्किलों के आगे आज की लडकियाँ अपनी जगह या विकल्प ढूँढकर आत्म सबलीकरण का मुकाम कायम करती हैं। इस तरह स्त्रियों की अनन्यता व बहनापा का काव्यबयान स्त्रीवाद की वैचारिकी पेश करने में सहायक है।

निर्मला पुतुल की कविताएँ उच्च या मध्यवर्गीय कपटता से बहुत दूर की सच्चाईयाँ पेश करती हैं। वे उस आदिवासी इलाके से बोल रही हैं जहाँ पर प्रगति का नामोनिशान नहीं है। पर वहाँ भी लिंगभेद की कचोट है जिसपर लिखे बिना वह नहीं रह सकती। स्त्री लेखन की यही खासियत है कि जहाँ से भी स्त्रियाँ लिखती हैं, अस्मिता, हैसियत और अस्तित्व चिंतन में उनकी आवाज़ें लिंगभेद के विकट अनुभवों का बयान करती हैं। हो सकता है कि उच्च

मध्यवर्गीय औरतों की जीवन स्थितियाँ, दलित या आदिवासी औरतों से भिन्न या संतोषप्रद हैं, हो सकता है कि कई औरतें आर्थिक रूप से स्वतंत्र भी हैं। पर सामाजिक–पारिवारिक जगत की जकडन में अधिकाधिक समान है; लिंगभेद के मारे हैं। इसलिए शहरी महिला लेखन की प्रतिनिधि और पहाडी लेखन की माहिर दोनों कवयित्रियाँ समान तरह की आवाज़ दर्ज करती हैं।

स्त्री शिक्षा का महत्व यह भी है कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत महिला उद्योगपतियों व अरब पतियों में स्त्रियों का प्रतिनिधित्व शामिल है। इनकी कोशिश व चिंता पद्धति से उत्भूत सामाजिक संस्थाएँ व सेवा सम्मेलन भी है जो समाज व राष्ट्र निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं।

स्त्री वैचारिकता के द्विआयामी रूप चर्चा के योग्य दिखाई पडते है। स्त्री पक्ष की वैचारिकी को लेकर स्त्री एवं कवयित्री जागरूक है। न बताने पर भी स्त्री पर लिंग एवं सांस्कृतिक भेदभाव पर सभी स्त्रियाँ चिंतित दिखाई पड़ती हैं।

3.8. दोहरी या तिहरी मार सो जूझती स्त्री

यद्यपि उत्तर भारत के प्रकृति व आदिवासी इलाकों में शिक्षित युवतियाँ आज भी कम हैं, शहरी प्रदेश तथा केरल जैसे राज्य स्त्री शिक्षा में काफ़ी अग्रसर है। शंका नहीं कि स्त्रियों का शिक्षित होने का लाभ पूरे परिवार व समाज को मिलता है। परंतु स्त्री शिक्षा के परिणामस्वरूप पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियाँ भी कम रोचक नहीं हैं। स्त्री जब कामकाजी बनी, उसका दायित्व बढ़ गया। बच्चों की परवरिश के साथ दूसरे घरेलू दायित्व भी उसे ही

निभाना पड़ता है। अतः शिक्षित कामकाजी नारी दोहरे या तिहरे दायित्वों से जूझती दिखाई पड़ती है।

ममता कालिया के कहे अनुसार –

''उसने अपने आप बाँटकर, दो कर डाला
दफ्तर में वह नीति नियामक, कुशल प्रशासक
घर में उसकी वह भूमिका, सदियों से जो रहती आई
समझ गई वह असली विजय यहाँ पानी है
बाकी दुनिया बेमानी है।''[1]

स्त्रियाँ राजनीतिक दलों में भी हाशियाकृत रहती हैं। वे दलीय राजनीति की सभी बातों में हस्तक्षेप करने की कोशिश करती हैं। सभी राजनीतिक दल स्त्री भागीदारी चाहते भी हैं। पर तुलनात्मक दृष्टि से स्त्रियों की संख्या नेता के रूप में कम है। पुरुष पुरुषसत्तात्मक राजनीति और भेदभाव पूर्ण संसदीय संस्थाओं में स्त्री आवाज़ हमेशा दबाई जाती है। तैंतीस प्रतिशत आरक्षण देने के बाद पंचायतों में स्त्रियों का राजनीतिक दखल और प्रशासनिक रूप अपेक्षाकृत मज़बूत बताया जाता है।

स्त्रियों को संसदीय आरक्षण दिलाने में पुरुष राजनीतिज्ञ ही अड़चनें डालते हैं। अपना उल्लू सीधा करने और राज बनाए रखने के लिए वे कई तर्क उठाते हैं ताकि स्त्रियों को हाशिए में रखकर उनका उपयोग व शोषण करते रहें।

---

1. ममता कालिया, खॉटी घरेलू औरत, वर्तमान साहित्य, जनवरी 2002, पृ. 55

इस वैषम्य को समकालीन स्त्री कविता समझाती है। उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा कोरपोरेट नीति के चलते स्त्रियाँ सिर्फ उपभोक्ता रह गई। वे सभी हरकतें करने लगती हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि वे भी इंसानियत को देखे बिना दुनियादारी व पुरुषमूल्य का अनुसरण करती हैं।

''समाचार है गुजरात के कल्ले आम में इस बार
महिलाओं की तादाद अच्छी खासी थी
में भी वे पुरुषों के पीछे नहीं रहीं।''[1]

अतः स्त्री कविता, स्त्री के 'सामाजिक प्राणी' होते रहने के पक्ष में है। राजनीतिक दल या नेताओं का स्त्री को उपकरण बनानेवाली जो घटिया हरकत होती है तो कविता आवाज़ उठाती है।

3.9. देहमुक्ति की बात

''माँ बहनों की इज्जत लूटी जिन लोगों ने
उनकी जय हो
खून बहाया मासूमों का जिन लोगों ने
उनकी जय हो
दांत गडने को जो व्याकुल उन कुत्तों की
जय हो जय हो।''[2]

विडंबनात्मक है कि शिक्षा व राजनीतिक भागीदारी तथा पारिवारिक संबंध प्राप्त होने के बाद भी सार्वजनिक जगहों पर स्त्री आज़ादी कायम नहीं हो

1. निर्मला गर्ग, समाचार है, हंस, जुलाई 2002, पृ. 51
2. अरुण कमल, गठभंड, पुतली में संसार, पृ. 64

पाई। स्त्री आज़ादी कहाँ, स्त्री सुरक्षा भी सरकार ठीक तरह से नहीं दे पाती। सडक, गलियाँ, बस, रेल गाड़ी तथा अन्य सार्वजनिक जगहों व यातायात की व्यवस्थाएँ स्त्री के लिए रक्षात्मक नहीं लगती हैं। यहाँ पर घटित दिन–ब–दिन सूचित स्त्री–उत्पीडन, बलात्कार तथा दूसरी घटनाएँ स्त्री की मानसिक स्थिति को बिगाडती है और वह अपने देहजन्य माने जैविक स्थितियों पर सोचकर दुःखी हो जाती है। पर्दा, घूंघट आदि में स्त्री को कैद रखने वाली पुरुषसत्ता, बच्चियों तथा ननों तक पर यौन आक्रमण करती है। आर्थिक स्वतंत्रता होने के बाद भी स्त्री देह पर यौन आक्रमण कम नहीं होता है।

स्त्री जागरण को शंका से देखनेवाले समाज में नारी और नारीवाद का खास दायित्व है। उसे समाज की सादवासी शंकाओं से टकराना है। यहाँ पर मुक्ति का अर्थ स्त्री की यौन उच्छृंखलता नहीं है, वह स्त्री के चयन और मानवाधिकारों पर केन्द्रित है।

गर्भ से पहले से लेकर स्त्री की यौन अस्मिता पर हमला हो जाता है। कोख से ही बच्ची मार दी जाती है। जन्म लेने के बाद भी पर उस पर भेदभाव का व्यवहार होता है। 'बोझ' समझकर उसकी हर बात टाली जाती है। आज भी यह वार्षिक आँकडा आ रहा है कि भारत के कई राज्यों व इलाकों में स्त्री भ्रूणहत्या चालू है। इसलिए वहाँ पर पुरुषों की जनसंख्या की तुलना में स्त्रियाँ बहुत कम हैं। इस विकासशील कहीं जानेवाली सभ्यता पर कविता प्रश्न करती है और उससे पूछती है कि उसे अपनी बच्चियों पर इतनी चिढ़ क्यों है?

''आखिर क्यों हैं तुम्हें
हमारे अस्तित्व पर इतनी चिढ
हमारी कोमल सपनों से इतनी नफरत?
घर–बार, जीने की चाह में छटपटाती
और जन्म से पहले ही
मरने को मजबूर कर दी जाती
हम हैं
तुम्हारी आजन्मी बेटियाँ।''[1]

3.10. स्त्री कविता की नीयत

''मेरा क्या होना है, कुछ नहीं होगा
अग्नि संभवों का कुछ कभी नहीं होगा
जैसी की वैसी रहूँगी
पानी और मिट्टी और आग
दरवाज़ों के भीतर दरवाज़ों के पार।''[2]

आज की स्त्रियाँ कई आत्मसम्मानपूर्ण जीवन के लिए चिंतन मनन करती हैं। उनके प्रयासों के चलते यह बताना है कि बाधाएँ होने पर भी जीवन को सम्मानपूर्ण अनुभव बनाने में स्त्रियाँ कामयाब होती हैं। पर शोषित स्त्रियों का एक तबका अब भी राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक पिछड़ापन झेलता है। इस विशाल स्त्री जगत् की मुक्ति आज की नारी व नारी लेखन का

---

1. कविता, पति : आजन्मी बेटियों की, आजकल, जनवरी 2002, पृ. 52
2. अनामिका, अग्नि, बीजाक्षर, पृ. 80

ध्येय है। इसके लिए वह स्त्री सशक्तीकरण पर आवाज लगाती है। वह तन–मन की स्वतंत्रता के लक्ष्यों पर बोलती है। उसके लिए शिक्षा में करने योग्य परिवर्तनों पर सोचती है।

स्त्री उन्नमन के लिए कई तरह कानूनी कारवाईयाँ की गई। विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिन्दू विवाह व तलाक अधिनियम 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिन्दू–स्त्री भरण पोषण अधिनियम 1956, यौन व्यापार निरोध अधिनियम 1956, दहेज निषेध अधिनियम 1961, गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम 1971 आदि इनमें प्रमुख हैं।

महिला स्वावलंबी कानून व्यवस्था स्त्री पर होनेवाले उत्पीडनों को रोकने में सहायक है। समस्या यह है कि खुद महिलाएँ इनसे या तो अनभिज्ञ हैं, नही ंतो पुरुष समाज, अपनी ताकत में इनको दबा कर रखता है। कानून और न्याय व्यवस्था के होने पर भी कार्यवाही में देरी होने के कारण स्त्री उत्पीडन के मामलों पर प्रश्न चिह्न रह जाते हैं। गुनाहगार को दण्ड मिलने का आंकडा बहुत कम है जो स्त्री संबंधी उपेक्षा का सूचक है।

स्त्री सबलीकरण के उपलक्ष्य में मानव अधिकार नियम भी लागू किया गया है। समाज विज्ञान, राजनीति विज्ञान आदि में स्त्री चेतना पर उचित स्थान देने की बात स्वीकार की गई। सरकारी नीति नियमों को स्त्रीपक्षीय बनाने के लिए सतत प्रयास जारी है। सबके कारण सामाजिक स्तर में स्त्री उन्नति का आंकडा बढ गया। पर भारतीय सामाजिक व्यवस्था की बंद रीतियों व पितृसत्तात्मक

प्रवृत्तियों के कारण लोगों की मानसिकता में अब भी स्त्री को दूसरे दर्जे की मानने की स्थितियाँ हैं, जो स्त्री जीवन पर हावी है। शंका नहीं कि पिछली शती से लेकर आज सामाजिक परिवर्तन से भारतीय स्त्री की जीवन यात्रा में काफी बदलाव आया है। शिक्षा, सामाजिक साझेदारी, कार्यकारिता, घरेलू दायित्व, कामकाज का जिम्मा आदि विभिन्न स्वरूपों में वे आगे बढ़ी है, उनकी भूमिका सकारात्मक सिद्ध हुई है।

3.11. स्त्री सबलीकरण एवं समकालीन कविता

समकालीन समय शोषण, उत्पीडन और अत्याचार के बदले सबलीकरण, जागरण, मुक्ति आदि शब्दों को अधिक उठाना चाहता है। स्वाभाविक तौर पर भारतीय सामाजिकता स्त्री सबलीकरण चाहती है, क्योंकि स्त्री की उपेक्षा सामाजिक संकट का बुलावा है। समाज वैज्ञानिकों का यही अभिप्राय है कि स्त्री के सबलीकरण से ही परिवार, समाज एवं राष्ट्र की खुशहाली का रास्ता खुलकर सामने आएगा। अतः इस बात पर अभी सरकार की आँखें भी पड़ गई है। योजनाओं व पद्धतियों को निचले पायदान तक पहूँचाने के लिए सरकारी नीतियाँ चालू हैं।

कविता एवं साहित्य भी इस बात को मानते हैं कि स्त्री को सबलीकृत किया जाना अनिवार्य है। शिक्षा एवं राजनीतिक संबल से उसका कार्य जारी है। नए संदर्भों तथा विडंबनात्मक माहौल को संभालने के लिए जागृत एवं शिक्षित होने का आह्वान कविता भी करती है। बड़ी चुनौतियों तथा सामुदायिक

संकटों के आगे स्त्री व पुरुष भेद बिना एकजुट होकर लड़ने व आगे बढ़ने का आह्वान कवि करता है।

''एक ही तो हैं हमारे लक्ष्य
एक ही तो है हमारी मुक्ति
साथ–साथ मिलकर चलेंगे हम
जहाँ गिरोगे तुम
वहीं रहेंगे हम
जहाँ झुकोगे तुम
वहीं उठेंगे हम
आओ, मुझे दो अपने साथ
चलो, मेरे पाँवों से चलो।''[1]

1. अरुण कमल, अपनी केवल धार, पृ. 51